द्वितीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान परिचय) अभ्यास ९

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : श्री शत्रुंजय मुक्ति वीरेन्दु रत्नत्रयी ट्रस्ट-हुबली

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

२. अजित-शांति स्तव (चालु)

ललियय (ललित) छंद

छत्त चामर पडाग जूवजव मंडिआ,
झय वर मगर तुरय सिरिवच्छ सुलंछणा;
दिव समुद् मंदर दिसा गय सोहिया,
सत्थिय वसह सीह रहचक्क वरंकिया. ललिययं.....३२

वाणवासिआ (वनवासिका) छंद

सहावलट्ठा, समप्पईट्ठा, अदोसदुट्ठा गुणेहिंजिट्ठा,
पसायसिट्ठा तवेणपुट्ठा, सिरीहिं इट्ठा, रिसीहिं जुट्ठा.

वाणवासिआ.....३३

अपरांतिका छंद

ते तवेण धुय सव्वपावया, सव्व लोअहिअ मलपावया;
संथुया अजिअ संतिपायया, हुंतु मे सिवसुहाणदायया.

अपरांतिका.....३४

-: शब्दार्थ :-

छत्त - छत्र
चामर - चामर
पडाग - पताका
जूव - यूप / स्तंभ
जव - जौ
मंडिआ - सुशोभित
जयवर - उत्तम ध्वजा
मगर - मगर
तुरय - घोडा
सिरिवच्छ - श्रीवत्स के
सुलंछणा - सुलांछन वाले

दिव - द्वीप
समुद्द - समुद्र
मंदर - मंदरगिरि
दिसागय - दिग्गज / दिशाओ के हाथी से
सोहिया - सुशोभित
सत्थिय - स्वस्तिक
वसह - वृषभ
सीह - सिंह
रहचक्क - रथ के, उत्तम चक्र के
वरंकिया - चिन्हवाले

सहावलट्ठा - स्वभाव से शोभायमान
समप्पइट्ठा - समान भूमि में रहे हुए / समभाव में स्थिर
अदोस दुट्ठा - दोष रहित
गुणेहिं - गुणो से
जिट्ठा - महान
पसायसिट्ठ - कृपा करने में उत्तम / अनुग्रह से श्रेष्ठ
तवेण - तप से
पुट्ठा - पुष्ट
सिरीहिं - लक्ष्मी स
इट्ठा - इष्ट
रिसीहिं - ऋषियों से
जुट्ठा - सेवित
ते - वे
तवेण - तप से
धुयसव्वपावया - जिन्होंने सर्व पाप दूर किये हैं

सव्वलोअहिय - सर्व लोक को हितकारी
मूल - मल (ज्ञान,दर्शन और चारित्र मोक्ष के)
पावया - प्राप्त कराने वाले
संथुया - स्तवना किये गये
अजियसंतिपायया - पूज्य अजितनाथ और शांतिनाथ भगवान के चरण
हुंतु - हो
मे - मने
सिवसुहाण - मोक्ष सुख
दायया - देने वाले

गाथार्थ :- छत्र, चामर, ध्वजा, युप / स्तंभ और जव के लक्षणो से सुशोभित, उत्तम ध्वज, मगर, अश्व तथा श्रीवत्स के लांछन वाले, द्वीप, समुंदर, मंदरगिरी, दिग्गजो से शोभायमान, स्वस्तिक, वृषभ, सिंह, रथ, चक्र वगैरह शुभ चिन्ह अंकित, स्वभाव से सुंदर, समभाव में स्थिर, गुणों में महान, अनुग्रह में श्रेष्ठ तप में पुष्ट, लक्ष्मी में इष्ट, मुनियों से सेवित, तप से सर्व पापों को दूर किये हैं, सर्व लोक के हितकारी मोक्ष के मूलरुप ज्ञान, दर्शन और चारित्र को प्राप्त कराने वाले और अच्छी तरह स्तवना किये गये पूज्य अजितनाथ और शांतिनाथ भगवान के चरण मुझे शिवसुख दायक हो ।.....३२-३४

गाहा (गाथा)

अेवं तव बलविउलं थुअं, मअे अजिअसंति जिणजुअलं;
ववगयकम्मरय मलं, गई गयं सासयं विउलं.....गाहा ३५
तं बहुगुण प्पसायं, मुक्खसुहेण परमेण अविसायं;
नासेउ मे विसायं, कुणउ अ परिसा विअ पसायं.....गाहा ३६
तंमोअेउ अ नंदिं, पावेउ अ नंदिसेणमभिनंदिं;
परिसावि य सुहनंदिं, ममय दिसउ संजमे नंदिं. .....गाहा ३७

-: शब्दार्थ :-

अेवं - इस प्रकार
तवबल विउलं - तपो बल से महान
थुअं - स्तवना की
मअे - में
अजिअसंतिजिण - अजितनाथ तथा शांतिनाथ जिन का
जुअलं - युगल
ववगय - रहित (गया है)
कम्मरयमलं - जिनका कर्म रुपी रज का मल
गइ गयं - गति को प्राप्त किया है
सासयं - शाश्वत
विउलं - विशाल
तं - वे
बहुगुणप्पसायं - बहुत गुणों से युक्त
मुक्ख सुहेण - मोक्ष के सुख से
परमेण - परम
अविसायं - खेद रहित
नासेउ - नाश करो
मे - मेरे
विसायं - खेद को
कुणउ - करो
अ - और
परिसावि - सभो भी
पसायं - प्रसाद / अनुग्रह
मोअेऊ - हर्ष प्रदान करो
नंदिं - समृद्धि को
पावेउ - प्राप्त करो
नंदिसेणं - नंदिषेण कवि को
अभिनंदिं - समृद्धि को
सुहनंदि - सुख की वृद्धि को
दिसउ - दो
संजमे - सत्रह प्रकार के संयम में
नंदिं - आनंद को

गाथार्थ :- तप के बल से महान, जिनके कर्मरुप रज तथा मल नाश हो गये हैं, शाश्वत तथा विशाल सुख वाली गति को प्राप्त किया है ऐसे श्री अजितनाथ तथा शांतिनाथ भगवान इन युगल की मैनें इस प्रकार से स्तवना की.....३५

बहुत गुणों के प्रसादवाला, उत्कृष्ट मोक्ष के सुख से खेद रहित अजितनाथ तथा शांतिनाथ भगवान का जोडा मेरे खेद (विषाद) का नाश करो और उनके गुणो को सुनने वाली यह सभा भी मेरे उपर अनुग्रह करो.....३६

ये दोनों मुझे हर्ष प्रदान करो, इस स्तवन के रचयिता नंदिषेण कवि को समृद्धि अथवा आनंद प्रदान करो, इस सभा के भी सुख में वृद्धि करो और मुझे संयम में आनंद प्रदान करो.....३७

श्रीगणधरवाद

दसवें श्रीमेतार्यस्वामी

आधारग्रंथ - श्रीकल्पसूत्र : अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्रीगुणसागरसूरि म.सा. तथा सचित्र गणधरवाद : प.पू. अरुणविजयजी म.सा.

वत्सभूमि तुंगियसन्निवेश नगरी के कौंडिन्य गोत्र के प्रसिद्ध विद्वान ब्राम्हण श्रीदतविप्र के घर दसवें गणधर का जन्म्म हुआ था । वरुणादेवी माताने अश्विनी नक्षत्र में शुभ योग में इस तेजस्वी बालक को जन्म दिया था । माा-पिता ने मेतार्य (मेतारज) ऐसा उनका नामकरण किया था, पूरा नाम था मेतार्य दत्तविप्र कौंडिन्य, ब्राह्मणकुल अनुसार वे अध्ययन,अध्यापन में लगे एवं विद्या यही ब्राह्मण कुल का धन है ऐसा समझकर खूब अभ्यास किया, निघंटु, छंद, पुराण, न्याय, दर्शन, तर्कशास्त्र तथा वेद वेदान्त आदि का अभ्यास करके वे एक ठोस विद्वान अध्यापक बने, अध्यापक के व्यवसाय में उनके ३०० शिष्य हुए थे । शास्त्रार्थ, चर्चा में वे भाग लेते थे ।

सोमिलविप्र के आमंत्रण से वे भी यज्ञ में भाग लेने खास अपापापुरी अपने ३०० शिष्यों के साथ पधारे थे और बहुत से विद्वानो के संशय श्रीमहावीर प्रभु ने दूर किये है, ऐसा जानकर वे भी अपने शिष्य परिवार के साथ समवसरण में गये । **''विज्ञान धन''** इत्यादि वेदपद का अर्थ गलत करने से परलोक जैसा कुछ है ही नहीं ऐसी उनकी मान्यता मन में घर कर गयी थी, परलोक की सत्ता एवं अस्तित्व वे मानने तैयार नहीं थे तो फिर आत्मा का परलोक में गमन-आगमन मानने की बात ही कहां रही । परलोक गमनागमन नहीं मानने में आये तो पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म को लेकर भी बडा प्रश्न खडा हुआ ।

अपने तीन सौ शिष्यो के साथ मेतार्य पंडित प्रभु के पास आये । प्रभु ने उनसे कहा कि, **''हे मेतार्य ! विज्ञानधन ऐवैतेभ्यो''** इस वेद पद से तुझे परलोक के विषय में शंका हुई है, वो बराबर नहीं है ऐसा कहकर प्रभु ने उन पदो का विस्तार से विवेचनकर सुनाया, और कहा कि, **''नारको वै ऐष जायतेयः शुद्रान्नमश्राति''** तथा **''सऐषयज्ञायुधी यजमानों ऽ जसा स्वर्गलोकंगच्छति''** इन वेदपदो का विचार कर, ये वेदपद ही परलोक की सिद्धि करके बताते है कारण की इन पदो में ऐसा कहा है कि जो ब्राह्मण शुद्र के अन्न को खाता है वो नारकी होता है तथा वो इस यज्ञरुपी आयुधवाला यजमान शीघ्रता से स्वर्गलोक में जाता है, इसलीये इन वेदपदो का विचार करके परलोक के अस्तित्व को स्वीकार कर । प्रभु के ऐसे मीठे वचन को सुनकर संशय दूर होने से प्रतिबोध पाकर अपने तीन सौ विद्यार्थी शिष्यों सहित नम्रभाव से प्रभु के चरणों में झुक पडे और प्रभु के पास दीक्षा लेकर मेतार्य पंडित प्रभु के शिष्य हुए ।

मेतार्य को वास्तविकता समझ में आने के बाद वे पकडकर रखने वाले वक्र नहीं थे, सरल एवं नम्र स्वभावी मेतार्य तुरंत अपनी शंका का समाधान होते ही श्रीमहावीर के चरणों में जीवन समर्पित कर दिया और ३६ वर्ष की युवावस्था में उन्होंने गृहस्थाश्रम छोडकर साधुत्व स्वीकार किया, ३०० शिष्यो के साथ वे सच्चे साधु अणगार बने एवं दसवें गणधर पद पर विराजमान हुए ।

२६ वर्ष के चारित्र पर्याय में आपश्री दस वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहे, त्रिपदी पाकर द्वादशांगी की रचना की, चौदह पूर्वी हुए और उम्र के ४६ वे वर्ष में उन्होंने मोहनीय आदि चार घाती कर्मो को खपाकर केवलज्ञान,

केवलदर्शन प्राप्त किया, सर्वज्ञ सर्वदर्शी बने और १६ वर्ष उन्होनें केवली के रुप में विचरण किया । चौथे आरे में जन्मे हुए एवं वज्रऋषभनाराच संघयण तथा समचतुरस्त्र संस्थान युक्त शरीर के धारक वे उम्र के ६२ वें वर्ष में शिष्यों के साथ राजगृही पधारे उनकी शिष्यसंतति की परम्परा नहीं चली, अन्त में एक मास के निर्जल उपवासपूर्वक संलेषणा करके पादपोपगमन अनशन कर भगवान महावीर से पहले उनकी हाजरी में ही निर्वाणपद प्राप्त किया, मोक्ष सिधाये, संसार से मुक्त हुए ।

जंबुद्वीप की नदियाँ

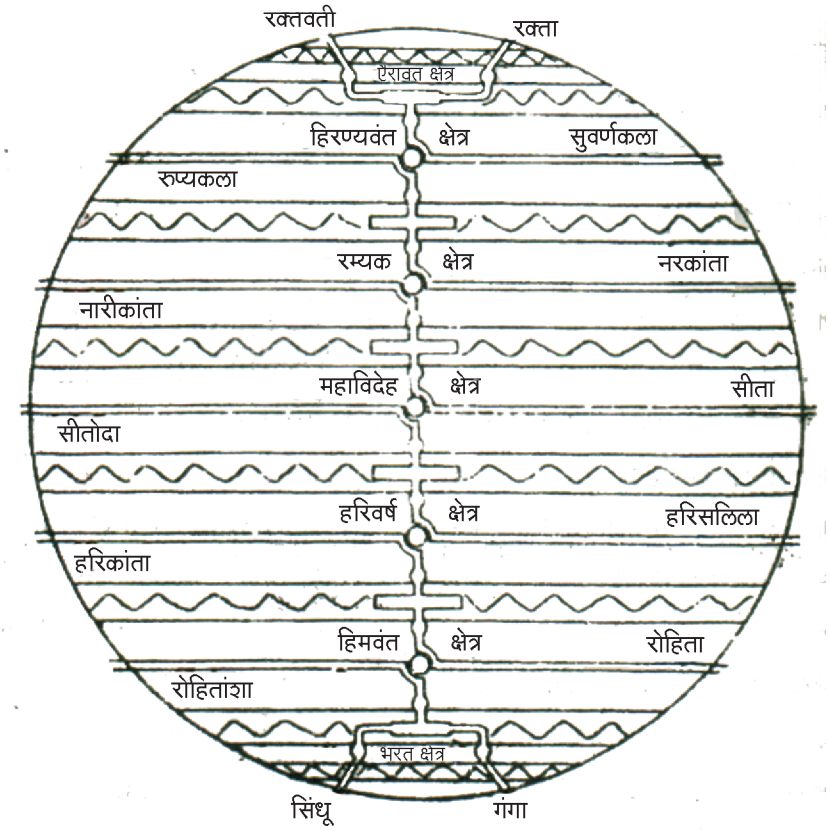

(लघु संग्रहणी) जैन भूगोल

नदियाँ

आ. हरिभद्रसूरि म.सा.

जंबुद्वीप के सरोवरों की बात बताने के बाद अब जंबुद्वीप की मुख्य शाश्वत नदियों का परिचय कराते है । प्रथम भरत और ऐरावत क्षेत्र की नदियोंकी बात बताते हुए कहते है -

गंगा सिंधु रत्ता, रत्तवई चउ नईओ पत्तेयं ।
चउदसहिं सहस्से हिं, समगं वच्चंति जलहिंमि ।।२१।।

गंगा, सिंधू रक्ता और रक्तवती ये चार नदियाँ हरेक चौदह हजार के साथ समुद्रमें जाती है ।

भरतक्षेत्र में गंगा और सिंधु ये दो महानदियाँ है तो ऐरावत क्षेत्र में रक्ता और रक्तवती ये दो महानदियाँ है ।

भरतक्षेत्र की गंगा और सिंधु नदियाँ लघु हिमवंत के उपर के पद्मद्रह में से निकलती है, गंगानदी पूर्व से निकलती है, सिंधु नदी पश्चिमसे निकलती है । दोनों नदियों को मार्ग में छोटी छोटी चौदह हजार नदियाँ मिलती है । इन चौदह हजार नदियों के साथ गंगा और सिंधु अनुक्रमसे पूर्व और पश्चिम की ओर लवण समुद्र को मिलती है ।

वैताढ्य पर्वत भरत क्षेत्र के उत्तर-दक्षिण दो विभाग करता है । जबकि ये नदियाँ (गंगा-सिंधु) इन दो विभाग के तीन तीन विभाग करती है, जिससे छः खंड होते है ।

इसी तरह ऐरावत क्षेत्र में रक्ता और रक्तवती नदियाँ शिखरी पर्वतके उपर स्थित पुंडरिक ह्रदमेंसे निकलती है । रक्तनदी पूर्व की ओरसे (वहाँ के सूर्योदय की अपेक्षासे पश्चिम से) और रक्तवती नदी पश्चिम की ओर से (वहाँ के सूर्योदय की अपेक्षा से पूर्व से) निकलती है । दोनों नदियों को मार्ग में छोटी छोटी चौदह हजार नदियाँ मिलती है । इन चौदह हजार नदियों के साथ रक्ता और रक्तवती नदियाँ भी लवण समुद्र में जा मिलती है । ये दो नदियाँ भी वैताढ्य के साथ ऐरावत क्षेत्र को छः खंडो में विभाजित करती है ।

एवं अब्भिंतरिया, चउरो पुण अट्ठवीससहस्सेहिं ।
पुणरवि छप्पन्नेहिं, सहस्सेहिं जंति चउ सलिला ।।२२।।

इस प्रकार से अंदर प्रदेश की चार नदियाँ अट्ठाइस अट्ठाइस हजार के साथ और चार नदियाँ छप्पन-छप्पन हजार के साथ जाती है ।

क्षेत्र के सामन्यतः तीन विभाग किये जाते है -

१) बाह्य क्षेत्र :- जिसमें भरत और ऐरावत क्षेत्रका समावेश होता है, वे जंबुद्वीप के दो छोर (उत्तर-दक्षिण) पर रहे हुए है ।

२) मध्य क्षेत्र :- इसमें महाविदेह क्षेत्र का समावेश होता है और ये जंबुद्वीप के बराबर मध्य में है ।

३) अभ्यंतर क्षेत्र :- जिसमें हिमवंत, हिरण्यवंत, हरिवर्ष और रम्यक क्षेत्रका समावेश होता है । यह क्षेत्र मध्य और बाह्य क्षेत्र के बीच में है । भरत और महाविदेह के बीच में एवं ऐरावत और महाविदेह के बीच यह अभ्यंतर क्षेत्र है । अभ्यंतर क्षेत्र में बहती नदियाँ भी अभ्यंतर नदियाँ कहलाती है ।

हिमवंत क्षेत्र में रोहिता और रोहितांशा दो नदियाँ २८००० छोटी छोटी नदियों के साथ अनुक्रमसे पूर्व की ओरसे पश्चिम की ओरसे लवण समुद्र को मिलती है ।

हिरण्यवंत क्षेत्र में सुवर्णकला और रुप्यकुला दो नदियाँ २८००० छोटी छोटी नदियों के साथ अनुक्रमसे पूर्व की ओरसे और पश्चिम की ओरसे लदवण समुद्र को मिलती है ।

रम्यकक्षेत्र में नरकान्ता और नारीकान्ता ये दो नदियाँ ५६००० छोटी छोटी नदियों के साथ पूर्वतरफसे और पश्चिम की ओरसे अनुक्रमसे लवणसमुद्र को मिलती है ।

महाविदेह क्षेत्र के नदियाँ

बाह्य और अभ्यंतर क्षेत्र की नदियोंकी विचारणा करने के बाद अब हम महाविदेह क्षेत्रकी नदियों का विचार करेंगे -

कुरुमज्झे चउरासी - सहस्साइं तहय विजयसोलससु ।
बत्तीसाइण नईणं चउदस सहस्साइं पत्तेअं (यं) ।।२३ ।।

करुक्षेत्र में ८४००० एवं सोलह विजयोंकी ३२ नदियों को हरेक को १४००० का परिवार है ।

महाविदेह क्षेत्र दो विभागों में विभाजित है, पूर्व महाविदेह और पश्चिम महाविदेह । भरतक्षेत्र में जिसतरह गंगासिंधु दो नदियाँ मुख्य है, वैसे महाविदेह क्षेत्र में सीता और सितोदा नदियाँ मुख्य है । सीता पूर्व तरफ लवण समुद्र को मिलती है, जब की सीतोदा पश्चिम महाविदेह में होकर पश्चिम की ओर लवणसमुद्र को मिलती है । महाविदेह के पूर्व विभाग में १६ विजय है, उनकी ३२ नदियाँ (प्रत्येक की दो दो) है । हरेक का परिवार १४००० का है । ये सब नदियाँ पूर्व की सीता नदीको मिलती है ।

१६ X २ X १४०००० = ३२ X १४०००० = ४४८०००

\+ ०८४००० उत्तर कुरु क्षेत्र की

५,३२,०००

(इसी तरह की गिनती सितोदा की समझना)

इस तरह सीता नदी नीलवंत पर्वतपर रहे हुए केसरी द्रह में से निकलकर सीता प्रपात में पडकर उत्तरकुरु में बहते हुए मेरुपर्वत को मोड देकर उपर बताये हुए ५,३२,००० नदियों के परिवार के साथ पश्चिम में लवणसमुद्र को मिलती है ।

महाविदेह के १ से ८ और १७ से २४ (कच्छ आदि ८, पद्म आदि ८) इन सोलह विजयों में दो मुख्य नदियाँ है वे गंगा और सिंधु के नाम से पहचानी जाती है ।

महाविदेह के ९ से १६ और २५ से ३२ (वत्स आदि ८, वप्र आदि ८) इन सोलह विजयों में प्रत्येक विजय की मुख्य नदियाँ रक्ता और रक्तवती के नाम से पहचानी जाती है ।

८ गंगा, ८ सिंधु, ८ रक्ता, ८ रक्तवती ये ३२ नदियाँ पूर्व में सीता नदी की और -

८ गंगा, ८ सिंधु, ८ रक्ता, ८ रक्तवती ये ३२ नदियाँ पश्चिम में सीतोदा नदी में अपने अपने परिवार के साथ मिलती है ।

मतान्तर

चउदससहस्स गुणिया, अडतीस नइओ विजयमाज्झेला ।
सीओयाए निवडंति, तह्य सीयाइं एमेव ।।२४ ।।

चौदह हजार से गुणित विजयों की अडतीस नदियाँ सीतोदा में पडती है और उसी प्रकार सीतामें भी गिरती है ।

पूर्व के गाथा में ८४००० नदियाँ कुरुक्षेत्र की गिनती में आती है, जब की यहाँपर वे नदियाँ ६ आंतर नदियों का परिवार गिना है ।

सीया सीओया वि य, बत्तीस सहस्स पंचलक्खेहिं ।
सव्वे चउदस लक्खा, छप्पन सहस्स मेलविया ।।२५।।

पाँच लाख, बत्तीस हजार, नदियों के साथ सीता और सितोदा बहती है । कुल मिलाकर चौदह लाख, छप्पन हजार होता है ।

अब तक की गयी नदियों की गिनती का यहाँ पर कुल जोड करना है -

बाह्य क्षेत्र में	(अ) भरत क्षेत्र की (गंगा-सिंधु)	०२८,०००
	(ब) ऐरावत क्षेत्र की (रक्ता,रक्तवती)	०२८,०००
अभ्यंतर क्षेत्र में	(अ) चार नदियाँ (हिमवंत, हिरण्यवंतमें)	१,१२,०००
	(ब) चार नदियाँ (हरिवर्ष ० रम्यकक्षेत्र)	२,२४,०००
मध्य क्षेत्र में	(अ) सीता नदी	५,३२,०००
	(ब) सीतोदा नदी	५,३२,०००
	कुलसंख्या	१४,५६,०००

श्रावक - दिनकृत्य धर्मोपदेश

शाम का समय होता है.....

सूर्य अस्ताचल की ओर जाता है.....

बहार खेलते हुए बच्चे जमा होते है..... दिवाबत्ती कर दादा दादी को घेरकर बैठते हैं, हमें कहानी सुनाओ ऐसी जिद करते थे और दादा-दादी प्रेम से उन्हें धर्मकथा द्वारा सहजतासे सरलता से धर्मबोध देते थे ।

यह है अपनी आर्य संस्कृति की बात । आज पश्चिम की हवा में हमारा रहन-सहन बदल गया है । घर में अब दादा-दादी की जरुरत रही नहीं है । धर्मकथा में किसी को रस नहीं है । धर्मकथा का स्थान घर घर में टी.व्ही. ने ले लिया है ।

शाम होती है और नये नये चॅनल पर नयी नयी सिरीयल देखने टीव्ही के सामने छोटे बडे सब स्थान ले लेते है । वास्तविक दुनिया में अशक्य ऐसी काल्पनिक दुनिया में, स्वप्नों की दुनिया के कार्यक्रम सब देखते है और उसका अनुकरण करने और मिलाने के लिये आजका मनुष्य आकाश-पाताल एक कर देता है, जीवन में दौडधुप लगा देता है, परंतु जीवन के अंतिम श्वास तक दौडने के बाद भी हाथ में कुछ नहीं आता और मन अशांत बन जाता है, हिंसा से घिर जाता है वह नफे में ।

ऐसी बर्बादी से अपने एवं स्वजनों के आत्मा को बचाने के लिये, जीवन के सत्य एवं वास्तविकता को समझने के लिये एवं समझाने के लिये शास्त्रों ने श्रावकों के नित्यक्रम में स्वजनों को एकत्रित कर धर्मचर्चा और धर्मोपदेश करने की बात कही है । धर्मकथा वासना-विकार की उत्तेजना को शांत करती है । असद् मार्ग से आत्मा को वापिस लौटाती है । सदाचार संपन्न बनाती है, परिवार में एक दुसरे के लिये प्रेम-स्नेह और मैत्री की भावना मजबूत करती है ।

जीवन में शांति और प्रसन्नता का वातावरण निर्माण करने के लिये, टिकाकर रखने के लिये धर्मकथा अनिवार्य है ।

स्वजनों को धर्मोपदेश

सव्वनुणा पणीअंतु, जईधम्मं नाव गाहण ।
इहलोक परलोहअ, तेसिं दोसेण लिम्पई ।।

सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ने ऐसा कहा है कि, स्वजन लोगों को जो धर्म प्राप्त नहीं कराता वह आलोक में और परलोक में स्वजनों के किये हुए पापों से खुद ही लिप्त होता है, अतः धर्मतत्व को जानने वाला श्रावक घरके सभी सदस्यों को एकत्रित कर धर्मदेशना देता है । श्रावक ने धर्म देना चाहिये । स्त्री-पुत्रादिक घर के कामकाज फुरसद नहीं मिलने से और चंचलता या प्रमाद के बहुलपने से गुरु के पास आकर धर्म नहीं सुन सकते तो भी खुद श्रावक ने ही स्वयं हररोज उनको उपदेश करते रहना चाहिये, जिससे वे भी धर्मयोग्य हो और धर्म में प्रवर्तमान हो ।

धन्यपुर के रहनेवाले धन्नासेठ गुरु के उपदेश से सुश्रावक हुए । वे हररोज शाम को अपनी स्त्री और चार पुत्रों को उपदेश देते थे । धनासेठ के धर्मोपदेश से उनकी स्त्री और तीन पुत्र बोध को प्राप्त हुए परंतु चौथा पुत्र नास्तिक होने से ''पुण्य - पाप कहाँ है ? '' ऐसा कहते हुए बोध पाता नहीं है अतः धन्नासेठ उसे धर्मबोध कैसे प्राप्त हो इस चिंता में थे । एक दिन उनके पडौस में रहती किसी वृद्ध श्राविका का अंतिम समय निकट जानकर धनासेठ ने निर्यामणा (अंतिम आराधना) करायी और कहा कि, '' आप देव हुई तो मेरे पुत्र को धर्म प्राप्त करा देना ।''

वह वृद्धा श्राविका मृत्यु पाकर सौधर्म देवलोक में देवीपने उत्पन्न हुई, उसने अपनी देवऋद्धि बताकर श्रेष्टिपुत्र को धर्मबोध प्राप्त कराया । धनासेठ की तरह सबने शाम को परिवार को एकत्रित कर धर्मोपदेश देना चाहिये, कर्मवश कदाचित् किसी को बोध ना प्राप्त हो तो भी धर्मोपदेश देनेवाले को एकान्त से लाभ ही होता है ।

स्वाध्याय

प्रतिक्रमण करने के बाद गुरु की विश्रामणा (सेवा) करे, सेवा से निवृत्त होकर श्रावक स्वाध्याय करे, श्रावक अपनी बुद्धि के अनुसार पूर्व में सिखाये हुए दिनकृत्यादिक श्रावकविधि जीव-विचार, नवतत्व, कर्मग्रंथ, बारह भावना, पुण्यप्रकाश आदि सूत्रादिक का परावर्तनारुप स्वाध्याय करे, स्वाध्याय दरमियान उच्चारित सूत्र अथवा ढाळों के अर्थ की विचारणा कर स्वयं के आत्मा को अनुरुप हित शिक्षा दे, अपने को खुद को अनुरुप हो ऐसी हित-शिक्षा दे, अपने को स्वंय को समझाकर संसार पर के वैराग्य को मजबूत बनाये, और धर्माराधना में खुद को अधिक से अधिक उद्यमवंत करे । इस प्रकार के स्वाध्याय से, स्वाध्याय करनेवाला एवं स्वाध्याय श्रवण करनेवाला दोनों का अंत में कल्याण ही होता है ।

अवंतीसुकुमाल आदि धर्मात्माओं को स्वाध्याय सुनने से जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ, और उन्होंने संयम के पथ पर प्रयाण किया था । जैन शासन के महान आचार्य हरिभद्रसूरि भी स्वाध्याय सुनकर ही संयम-स्वीकारने तत्पर हुए थे । ऐसा स्वाध्याय हमारे जीवन का एक अंग होना चाहिये ।

धर्मदास नामक श्रावक हररोज शामका (दैवासिक) प्रतिक्रमण कर स्वाध्याय कर रहा था, एक दिन धर्मदास श्रावक ने अपने पिता जो सुश्रावक थे परंतु उनकी प्रकृति क्रोधिष्ट थी, उन्हे क्रोधत्याग का उपदेश दिया अतः वे कोपायमान हुए और हाथमें एक लकडा उठाकर मारने दौडे, परंतु रात्रीका अंधःकार होने से घर के खंभेपर उनका मस्तक जोर से लगा जिससे वे तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुए, और सर्परुप में उत्पन्न हुए ।

एक बार वह कालासर्प पुत्र को दंश करने आया । उस वक्त स्वाध्याय करता हुआ धर्मदास निम्मोक्त गाथा का उच्चारण करता है -

तिव्वंपि पुव्वकोडी, कयंपि सकयं मुहुत्तमित्तण ।
कोहग्गी हओ हणिक, हहा हवइ भवदुगे विदुहा ।।

क्रोधरुपी अग्नि से ग्रसित पुरुष, पूर्व करोड वर्ष के किये हुए सुकृत को दो घडी मात्र में जला डालता है, और हा हा इति खेदे ! वह प्राणी दोनो भवों में दुःखी होता है ।

ऐसा क्रोध का अभिप्राय सुनकर तत्काल उस सर्प को जातिस्मरण ज्ञान हुआ । अतः वैरभाव छोडकर अनशन लेकर कालधर्म को प्राप्त हुआ और सौधर्म देवलोक में देव हुआ । पश्चात् अपने पुत्र को सब कारोबार सौंपकर धर्मदास श्रावक भी एकबार स्वाध्याय करते हुए ध्यान में लीन हो गया, जिससे गृहस्थपने में ही केवलज्ञान को प्राप्त हुआ ।

इस दृष्टांत से स्वाध्याय बहुत ही लाभकारी है, ऐसा जानकर स्वाध्याय में ही प्रवृत्ति करनी चाहिये ।

जिससे उपवास आदि तप ना हो उस आराधक ने स्वाध्यायादि द्वारा अपनी आलोचना उतारनी चाहिये । एक उपवास के बराबर २००० गाथाओं का स्वाध्याय शास्त्रकारों ने बताया है ।

स्व + अध्याय = स्वाध्याय. अपने खुद को, आत्माको सिखाना यह स्वाध्याय है । अनादि कालसे संसार में परिभ्रमण करते हुए आत्माको ''स्वाध्याय'' के अभ्यंतर तप के मार्ग से आगे बढाकर सद्गति और परंपरा से सिद्धगति के स्वामी बनाने के लिये प्रचंड पुरषार्थ प्रारंभ करें ।

स्वाध्याय

राजा गांव को काबू मे रखता है, सम्राट देश को काबू में रखता है ।

चक्रवर्ती छह खंडपर प्रभुत्व रखता है । दुनिया में किसी पर भी काबू रखना आसान है । प्रभु कहते है - **''दुर्लभ है अपनी आत्मा पर काबू पाना । ''**

अन्य का अनुशासन करना खूब सहज है, पर खुद के आत्मा पर अनुशासन रखना अत्यंत कठीन और दुष्कर है ।

जिनशासन प्राप्त श्रावक और साधु दिन पूर्ण होने पर आवश्यक क्रिया के बाद (प्रतिक्रमण के बाद) स्वाध्याय करे । अपनी आत्मा पर अनुशासन रखें ।

स्वाध्याय यह श्रुतसागर की भक्ति है ।

आकाश जैसे अनंत वैसे ज्ञानसागर भी अनंत है । अनंत का प्रकाशक श्रुतसागर, श्रुतसागर की मस्ती किनारे से मानी नहीं जा सकती, किनारे से तो एकाद तरंग शीतलता की अनुभूति कराकर चली जाती है ।

श्रुतसागर में, उसके स्वाध्याय में गोताखोर बनकर गोता लगाता है, श्रुतसागर में से रत्न मिलते है, बाकी तो सागर के किनारे बैठ सागर की हवा खानी है, उसे तो छीप ही मिलेगी ।

ज्ञान तो जो आराधना करता है, उसे प्राप्त होता है, संपत्ति विरासत में मिल सकती है, परंतु ज्ञान विरासत में नहीं मिलता । पुरुषार्थ से प्राप्त किया जा सकता है ।

कर्म - विज्ञान

(आधार ग्रंथ - कर्म - विपाक (प्रथम कर्मग्रंथ) - आ. देवेन्द्रसूरि म.)

नाम कर्म (चालू)

रवि-बिंबे उ जीअंगं, ताव जुअं आयवाउ न उ जलणे ।
जमुसिण फासस्स तहिं, लोहिअण्णस्स उदउत्ति ।।४५।।

गाथार्थ - सूर्य बिंब (विमान) में स्थित जीवों का शरीर ताप युक्त प्रकाश देता है, वह आतप नाम कर्म का उदय है ।

परंतु अग्निकायकि जीवो में इस कर्म का उदय नहीं होता है । उनमें उष्ण स्पर्श और रक्तवर्ण नाम कर्म का उदय होता है ।

जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर अनुष्ण होने पर भी उष्ण प्रकाश देता है, उसे आतप **नाम कर्म** कहते है ।

सूर्य के विमान में रहे हुए बादर-पर्याप्त पृथ्वीकाय जीवों को आतप नाम कर्म का उदय होता है । वे स्वयं शीतल हैं, परंतु उष्ण प्रकाश प्रदान करते हैं ।

अग्निकाय के जीव स्वयं उष्ण हैं । इससे वहाँ आतप नामकर्म का उदय नही हैं, परंतु उष्ण नामकर्म और रक्त नाम कर्म का उदय है ।

उद्योत नाम कर्म

अणुसिण-पयास-रुवं जिअंगमुज्जोअए इहुज्जोआ ।
जइ-देवुत्तर विक्किअ, जोइस-खज्जोअ माइव्व ।।४६।।

गाथार्थ :- साधु का वैक्रिय शरीर, देवों का उत्तर वैक्रिय शरीर, चंद्रादि ज्योतिष्क देव, खद्योत (जुगनु) आदि की तरह जिन जीवों का शीत शरीर ठंडा(अनुष्ण) प्रकाश करता है, उसमे कारण रुप उद्योत नाम कर्म का उदय है । जिस कर्म के उदय से जीव का अनुष्ण शरीर ठंडा प्रकाश करता है वो उद्योत नाम कर्म ।

जैसे - वैक्रिय (लब्धि युक्त साधु का वैक्रिय शरीर, देवों का उत्तर वैक्रिय शरीर, चंद्र-ग्रह,नक्षत्र, तारा वगैरह में रहे हुए पृथ्वीकाय-बादर पर्याप्ता जीव, जुगनु (चउरिन्द्रिय जीव) मणि, रत्न वगैरह ।

अगुरु - लघु तथा तीर्थंकर नाम कर्म

अंग न गुरु न लहुअं, जायइ जीवस्स अगुरु लहु उदया ।
तित्थेण तिहुअणस्स वि, पुज्जो से उदओ केवलिणो ।।४७।।

गाथार्थ :- अगुरु लघु नाम कर्म के उदय से समस्त जीवों को अपना शरीर न भारी लगता है, न हल्का लगता है ।

तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से जीव त्रिभुवन में पूजनीय बनता है । जिसका उदय केवलज्ञानी भगवन्तों को होता है ।।४७।।

विश्व के जीवो को स्वयं का शरीर न तो भारी लगता है, न तो हल्का लगता है, न तो हाथी को स्वयं का शरीर भारी लगता है, न तो चींटी को स्वयं का शरीर हल्का लगता है ।

जिस कर्म के उदय से जीव को स्वयं का शरीर गुरु (भारी) नहीं, लघु (हल्का) नहीं लगता उसे **अगुरुलघु नाम कर्म** कहते है ।

केवलज्ञान की अनमोल संपदा को उपलब्ध करके जिस कर्म के उदय से आठ महाप्रितिहार्यादि अतिशयों की प्राप्ति होती है, त्रीभुवन में पूजनीय बनते हैं और पूजनीय धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं, उसे **तीर्थंकर नाम कर्म** कहते हैं ।

निर्माण और उपघात नाम कर्म

अंगोवंगनिअमणं, निम्माणं कुणइ सुत्तहारसमं ।
उवघाया उवहम्मइ, सतणुवयवलंबिगाई हिं ।।४८।।

गाथार्थ :- सूत्रधार (सुथार) के समान अंगोपांगो की सही स्थान पर व्यवस्थित रुप से संयोजना करने वाले कर्म को निर्माण नाम कर्म कहते हैं ।

उपघात नाम कर्म के उदय से जीव स्वयं के शारीरिक अवयवों (पडजीभि आदि) के द्वारा दुःखी होता है ।।४८।।

सुथार के हाथ के नीचे अन्य कारीगर छोटे छोटे अवयवों को बना देते हैं, परंतु उन्हें यथायोग्य स्थान पर जोडने का काम जिस तरह मुख्य सुथार करता है, उसी तरह अंगोपांग नाम कर्म अलग अलग अंगोपांग की रचना कर देते हैं, परंतु हाथ-पाँव, आँख, कान आदि को यथायोग्य स्थान पर जोडने का कार्य निर्माण नाम कर्म करता है ।

अंग, उपांग और अंगोपांग की नियत स्थान पर स्थापित करे वह **निर्माण नाम कर्म** है । जिस कर्म के उदय से जीव स्वयं से विकृत विचित्र शारीरिक अवयवों के कारण दुःखी होता है, वह **उपघात नाम कर्म** है ।

जैसे - रसोली, पडजीभी, हरस, मस्सा, छह अंगुलिया, चोर दांत वगैरह । गलाफांसी, आत्महत्या, आत्मदाह करना भी उपघात नाम कर्म का उदय ही है, क्योंकि उसमें भी कारण शारीरिक दुःख ही है ।

त्रस -बादर पर्याप्त नाम कर्म

बि-ति-चउ पणिंदिअ तसा, बायरओ बायरा जीआ थूला ।
निअ निअ-पज्जत्ति-जुआ, पज्जत्ता लद्धि-करणेहिं ।।४९।।

गाथार्थ :- जिस कर्म के कारण जीव धूप-छाँव, सुख-दुःख आदि के कारण गमनागमन करता है, उसे त्रस नाम कर्म कहते हैं ।

त्रस नाम कर्म का उदय द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों को होता है ।

बादर नाम कर्म के उदय से जीव बादर (स्थूल) पर्याय प्राप्त करता है । पर्याप्त नाम कर्म के उदयसे जीव अपनी अपनी पर्याप्तियाँ परिपूर्ण करते हैं । पर्याप्त नाम कर्म दो प्रकार का है - १) करण पर्याप्ता नामकर्म २)

लब्धि पर्याप्ता नाम कर्म ।।४९।।

१) जिस कर्म के उदय से जीव को त्रसपना प्राप्त हो वह **त्रसनाम कर्म** है । त्रसपना याने कोई भी विपत्ति आने पर अथवा तापदिक की पीडा आने पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्वेच्छा पूर्वक जा सके ऐसे शरीर की प्राप्ति ।

जैसे - द्विन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जीव ।

२) जिस कर्म के उदय से बादर / स्थूल शरीर प्राप्त होता है, उसे **बादर नाम कर्म** कहते हैं । बादर याने चक्षुग्राहय (आँखो से देख सकें ऐसे) शरीरवाला एक-अनेक, संख्यात, असंख्यात, अनंत भी शरीर साथ मिलकर जो आँखो के द्वारा देख सकें वो बादर कहलाते हैं ।

३) जिस कर्म के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ अवश्यमेव पूर्ण करता है, उसे **पर्याप्त नाम कर्म** कहते हैं ।

पर्याप्त जीवों के दो भेद हैं - १) लब्धि पर्याप्त २) करण पर्याप्ता

१) वे जीव जो स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करने की शक्ति से संपन्न होते हैं, पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के बाद ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उन्हें **लब्धि पर्याप्ता** जीव कहते हैं ।

२) वे जीव जिन्होंने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ली हैं, उन्हें करण पर्याप्ता कहते है । वे जीव जो स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, उन्हे **लब्धि अपर्याप्ता** कहते हैं ।

जो जीव अभी अपर्याप्त है पर निश्चित पर्याप्ति पूरी करेंगे वे **करण अपर्याप्ता** है ।

प्रत्येक - स्थिर - शुभ - सौभाग्य नाम कर्म

पत्ते अ तणू पत्ते, उदहणं दंत - अट्ठिमाइ थिरं ।
नाभूवरि सिराइ सुहं, सुभगाओ सव्व-जण-इट्ठो ।।५०।।

गाथार्थ :- प्रत्येक नामकर्म के उदय से जीव अलग अलग (प्रत्येक) शरीर प्राप्त करता है । स्थिर नाम कर्म के उदय से अस्थि-दांत आदि स्थिर प्राप्त होते हैं ।

शुभ नाम कर्म के उदय से नाभि से उपर के मस्तक वगैरह शुभ अवयव प्राप्त होते हैं ।

सौभाग्य नाम कर्म के उदय से जीव सभी व्यक्तिओं को प्यारा / इष्ट लगता है ।

एक शरीर में अनंत जीव वो साधारण (वनस्पतिकाय)

एक शरीर में एक जीव वो प्रत्येक

जिस कर्म के उदय से प्रत्येक (जीववार भिन्न भिन्न) शरीर की प्राप्ति होती है वो **प्रत्येक नाम** कर्म है ।

जिस कर्म के उदय से शरीर में स्थिर अवयवों की प्राप्ति होती है वह **स्थिर नामकर्म** है । जैसे - दांत, अस्थियाँ वगैरह ।

जिस कर्म के उदय से नाभि के उपर के मस्तकादि शुभ अवयवों की (जिसके स्पर्श से किसी को अप्रीति न हो) प्राप्ति होती है वह **शुभ नाम कर्म** हैं । जैसे - हाथ, चेहरा, आँख वगैरह ।

जिस कर्म के उदय से दूसरों पर कोई उपकार न किया हो फिर भी दूसरों को प्रिय / अच्छा लगे वह **सौभाग्य नामकर्म** है ।

सुस्वर - आदेय - और यश नाम कर्म

सुसरा महुरसुहझुणी, आइज्जा सव्वलोअगिज्झवओ ।
जसओ जसकि त्तीओ, थावरदसगं विवज्जत्थं ।।५१ ।।

गाथार्थ :- सुस्वर नाम कर्म के उदय से मधुर एवं सुखकारी वाणी प्राप्त होती है । **आदेय नाम कर्म** के उदय से सभी लोग उसके वचन को ग्रहण (मान्य) करते हैं । यश नाम कर्म के उदय से यश और किर्ति प्राप्त होती है । इस त्रस दशक से विपरीत अर्थवाला स्थावर दशक जानना चाहिये ।।५१।।

१. जिस कर्म के उदय से मीठी मधुर और सर्व जीवों को सुखकारी स्वर की प्राप्ति होती है, वह **सुस्वर नाम कर्म** है । जैसे - कोयल

२. जिस कर्म के उदय से लोगों को मान्य वचन की प्राप्ति होती है, अथवा जिस कर्म के उदय से जीव का वचन सभी लोग मान्य करते हैं, वह **आदेय नाम कर्म** है ।

३. जिस कर्म के उदय से सर्वत्र यश-कीर्ति फैले वह **यश नाम कर्म** है ।

उपरोक्त तीन गाथा में (४९-५०-५१) हमने त्रस दशक की दस प्रकृतियाँ जानी । स्थावर दशक इससे विपरीत है । स्थावर दशक का संक्षिप्त परिचय निम्नोक्त है -

स्थावर दशक

१. जिस कर्म के उदय से स्थावर पना प्राप्त होता है, वह **स्थावर नाम कर्म** है । जैसे - एकेंद्रिय, पत्थर, पानी वगैरह ।

२.जिस कर्म के उदय से अनन्त जीवों के शरीर एकत्र हो तो भी आँखो से या यंत्र से भी देख न सके, ऐसा सूक्ष्मपना प्राप्त हो वह **सूक्ष्म नामकर्म** है ।

३. जिस कर्म के उदय से स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करने में समर्थ न हो या उन्हें पूर्ण किये बगैर मृत्यु को प्राप्त करते हैं वह **अपर्याप्त नाम कर्म** है ।

४. जिस कर्म के उदय से जीव को साधारण शरीर प्राप्त होता है वह **साधारण नाम कर्म** (अनंताजीव एकत्र हों पर एक ही शरीर मिले) । जैसे - आलू, प्याज, गाजर, मूला वगैरह ।

५. जिस कर्म के उदय से अस्थिर अवयवों की प्राप्ति होती है, वह **अस्थिर नाम कर्म** है । जैसे - कान,पलक,जीभ, हाथ, पाँव की शिथिल संधि ।

६. जिस कर्म के उदय से नाभि से नीचे के अशुभ अवयवों की प्राप्ति होती है वह **अशुभ नाम कर्म** है ।

७. जिस कर्म के उदय से परोपकार करने पर भी जीव अन्य को अप्रिय लगता है, उसे **दौर्भाग्य नाम कर्म** कहते हैं ।

८. जिस कर्म के उदय से अप्रिय और कर्कश स्वर की प्राप्ति होती है, वह **दुस्वर नामकर्म** है ।

९.जिस कर्म के उदय से जीव को निंदा, अपयश, अकीर्ति मिलती है वह **अपयश नाम कर्म** है ।

गोत्र कर्म - अन्तराय कर्म

गोअं दुहुच्च - नीअं कुलाल इव सुघड - भुंभला- इअं ।
विग्धं दाणे लाभे भोगुवभोगेसु वीरिए अ ।।५२।।

गाथार्थ :- जिस प्रकार कुम्हार दो प्रकार के घडे बनाता है । एक प्रकार के घडे में मदिरा आदि भरी जाने से अशुभ होता है । दूसरे प्रकार के घडे में दूध आदि भरे जाने से शुभ होता है । उसी प्रकार गोत्र कर्म भी दो प्रकार का होता है - १) उच्च गोत्र कर्म २) नीच गोत्र कर्म ।

अन्तराय कर्म पाँच प्रकार का है - १) दानान्तराय २) लाभान्तराय ३) भोगान्तराय ४) उपभोगान्तराय ५) वीर्यांतराय ।।५२।।

गोत्र कर्म दो प्रकार का है - १) उच्च गोत्र कर्म २) नीच गोत्र कर्म ।

कुंभार दूध वगैरह के लिये सुघट-अच्छे सुंदर घडे भी बनाता है तथा मदिरा (दारु) वगैरह के लिये कुघट-भूंभला भी बनाता है । उसी तरह कर्म सत्ता भी जीव को उच्च या नीच गोत्र दिलाती है । उच्च और नीच बनाती है ।

जिस कर्म के उदय से उच्च गोत्र में जन्म मिले वह **उच्च गोत्र कर्म** । जिस कर्म के उयद से नीच गोत्र में जन्म मिले वह **नीच गोत्र कर्म** ।

उच्च गोत्र के आठ भेद है -

१. जाति विशिष्टता २) कुल विशिष्टता ३) बल विशिष्टता ४) रुप विशिष्टता ५) तप विशिष्टता ६) श्रुत विशिष्टता ७) लाभ विशिष्टता ८) ऐश्वर्य विशिष्टता ।

नीच गोत्र इससे विपरीत जानना ।

अंतराय कर्म

आत्मा में दानदि पाँच लब्धियाँ (शक्तियाँ) है उन्हें अटकाने का, रोकने का, विघ्न करने का कार्य अंतराय कर्म करता है । पाँच लब्धियों को अटकाने वाला अंतराय कर्म भी पाँच प्रकार का है -

१) जिस कर्म के उदय से शक्ति और संयोग होते हुए भी, दान का महिमा जानते हुए भी दान देने का उत्साह न हो वह **दानांतराय कर्म** है । जैसे - कपिला दासी ।

२) जिस कर्म के उदय से पात्रता योग्यता होते हुए भी वस्तु की प्राप्ति न हो वह **लाभान्तराय कर्म** । आदिनाथ प्रभु, ढंढण मुनि ।

३) जिस कर्म के उदय से सर्व भोग सामग्री उपलब्ध होते हुए भी जीव भोग न सके वह **भोगान्तराय कर्म** है । जैसे - मम्मण शेठ ।

४) जिस कर्म के उदय से सर्व उपभोग की सामग्री उपलब्ध होते हुए भी जीव उसका उपभोग न कर सके वह **उपभोगांतराय कर्म** । जिस वस्तु को एक ही बार उपयोग में ले सके अथवा भोग सके वह भोग । जैसे - खाद्य सामग्री, पुष्प वगैरह ।

५) वीर्य का अर्थ होता है शक्ति, बल, सामर्थ्य । जिस कर्म के उदय से जवान होते हुए भी, नीरोगी होते हुए भी उसे अपनी शक्ति सामर्थ्य का उपयोग करने का मन न हो वह **वीर्यान्तराय कर्म** है ।

विरति वाटिका

सामायिक व्रत

पुण्यानुबंधी पुण्य जागता है.....

जीव श्रावक बनना चाहता है .....

प्रथम सम्यग्दर्शन पाता है.....

फिर पांच अणुव्रत जीवन में आते है, उत्तर गुणों को जीवन में विकसित करने पर तीन गुणव्रत आते है....

ऐसे धीरे-धीरे आगे बढने पर जीव साधु जीवन के आस्वादन रुप चार शिक्षाव्रतो में प्रवेश करने को तरसता है । इन शिक्षाव्रतो में प्रवेश सामायिक व्रत के द्वारा होता है ।

जिसमें समता की आय होती है, उसे समायिक कहने में आता है । जीव जैसे-जैसे सामायिक की आराधना में आगे बढता है, वैसे वैसे उसके जीवन में समता की वृद्धि होते दिखनी चाहिये । समता आये तो ही सामायिक की सच्ची सफलता है, एक भी शुद्ध सामायिक आत्मा को नरक आदि दुर्गति में से बचाता है ।

श्रेणिक महाराजा को जब स्वयं नरक में जाने वाले है इस बात का ख्याल आया तब परमात्मा महावीर के पास जाकर उन्होंने नरकगति को टालने हेतु के उपाय पूछे, प्रभुद्वारा बनाये उपायों में से एक उपाय सामायिक का था । प्रभु महावीरस्वामी ने श्रेणिक महाराजा को कहा '' यदि पुणिया श्रावक तुम्हें एक सामायिक का फल दे तो तुम्हारा नरक टले ।''

ऐसी उत्कृष्ट कोटि की साधना हमें पूर्व जीवन के किसी महान पुण्य के उदय से प्राप्त हुई है । ऐसे समय में हम प्रमाद करे यह योग्य नहीं माना जा सकता । आलस छोडकर, सामायिक की साधना में हमें लग जाने का है, हमारा सामायिक शुद्ध बने इसके लिये भी सावधान बनना है । सामायिक को शुद्ध करने सामायिक के अतिचार एवं दोषो को जानना चाहिये । जीवन में से चुन चुनकर इन दोषो को दूर करने पुरुषार्थ करना चाहिये, शुद्ध समायिक में रहा हुआ श्रावक साधु जैसा कहलाता है, ज्यादा क्या कहना ? सामायिक यह अडतालीस मीनिट का साधुपना ही है ।

सामाइअम्मि उ कअे, समणो इव सावओ हवई जम्हा ।
अे अेण कारणेणं, बहुसो समाईअं कुज्जा ।

नये आते कर्मो को अटकाने..... पूर्व के कर्मो को खपाने ऐसे इस अमूल्य समायिकव्रत को समझकर जीवन में स्वीकारने तत्पर बनते है ।

चार शिक्षाव्रत में प्रथम सामायिकव्रत है, जो रागद्वेष रहित यानि समता भाव का लाभ जिससे मिले, उसे ही सामायिक कहा जाता है । इस नववें सामायिक व्रत को सम्यक् प्रकार से करते हुए पांच अतिचार लगते है, उनकी शुद्धि करनी चाहिये, ये पांच अतिचार निम्न अनुसार है :-

१) प्रथम सामायिक करते हुए मनमें आर्तध्यान, रौद्रध्यान आहट्ट, दोहट्ट का चिंतन करते हुए मनोदुःप्रणिधान करे वो **मनोदुःप्रणिधान** नामक अतिचार है ।

२) वचन से तू अमुक स्थान पर जा, तू यहां आ, तू यह चीज ले, तू मुझे यह चीज दे, तू अमुक वस्तु यहां ला, तू यह चीज यहां रख ऐसा सावद्य यानि पापसहित वचन बोला हो तथा खुले मुँह बात की हो, पद अक्षर आदि अशुद्ध सामायिक में बोलते है, वो **वचन दुःप्रणिधान** नामक अतिचार जानना ।

३) काया के द्वारा बिनापुंजे, बिनाप्रमार्जित स्थान पर बैठे तथा शरीर को पूंजे, प्रमार्जित किये बिना खमासमणे वांदणे देना, सामायिक में अपने शरीर के अवयव हाथ, पैर वगैरह तथा बैठने का आसन आदि है उन्हें हिलाया करे, दिवार को पीठ टिकाकर बैठे वो **काय दुःप्रणिधान** अतिचार जानना ।

४. चौथा सामायिक करने का समय हो फिर भी सामायिक न करे अथवा करके विस्मृत कर दे, सामायिक के सूत्र उच्चारित किये या नहीं उच्चारित किये, पाला या नहीं पाला, ऐसी विस्मृति प्रबलप्रमाद के उदय से रखे वो सामायिक **अकरणनामा** अतिचार अथवा **स्मृतिविहीन** अतिचार जानना ।

५. अनविस्थत अतिचार यानि समायिक करते समय-असमय देखे नहीं तथा सामायिक का दो घडी का काल पूर्ण करना चाहिये वो दो घडी पूर्ण हुई न हो वो बिना पाले यानि दो घडी पूरी न हुई हो और करे तो जैसे-तैसे करे, जल्दबाजी से पाले (पूर्ण करे) यह पांचवा **अनवस्थित** अतिचार जानना ।

तथा सामायिक करके यहां - वहां परिभ्रमण करे, सामायिक में निद्रा करे, देशकथा आदि विकथाये वगैरह प्रमाद करे, शून्यपन से समायिक करे, सचित्त वस्तु का संघट्ट होने पर इरिया वही पडिक्कमे नहीं तथा कण, कापासिया, फूल, फल पान एवं स्त्री-पुरष आदि का संघट्ट हुआ हो इस नवमें समायिक व्रत के विषय में अतिचार जानना । सामायिक में मन, वचन, काया के बत्तीस दोष लगने की संभावना होती है, ये दोष निम्न अनुसार है :-

मन के दस दोष

१) मन में विवेक न रखे २) यशकीर्ति की चाहना रखे ३) मन में धन की इच्छा रखे ४) मन में गर्व लाये ५) डरते डरते सामयिक करे । ६) धन पाने का नियाणां करे ७) संशय सहित सामायिक करे ८) मन में नाराजगी रखते हुए सामायिक करे ९) अविनीतपन से सामायिक करे १०) भक्ति रहित होकर सामायिक करे ।

वचन के दस दोष

१) सहसात्कारे बिना विचार किये बोले २) किसी पर झूठा आरोप लगाये ३) अपेक्षा बिना स्वेच्छा से बोले ४) कुवचन बोले ५) सूत्र पढते वचन संक्षिप्त करे ६) साधार्मिक के साथ कलह करे ७) देश आदि चार विकथा करे ८) दूसरो की हंसी मजाक करे ९) पद संपदा में अशुद्ध सूत्र पढे १०) जल्द बाजी में जैसा -तैसा बोले ।

काया के बारह दोष

१) वस्त्र से या हाथ से पालखी लगाकर बैठे २) आसन आगे पीछे हिलाये ३) दृष्टि चपलपन से चारो दिशा में घूमती रहे ४) कुछ सावद्य कार्य करे ५) खंभे तथा दीवार का टेका लेकर बैठे ६) अंगोपांग संकुचित करे, फैलाये । ७) आलस मोडना ८) उंगलिया चटकाये ९) शरीर का मेल उतारे १०) खुजली करे ११) सारे अंग वस्त्र

से ढंके १२) अंग खुला रखे ।

सारे मिलाकर बत्तीस दोष हुए जिन्हैं त्यागकर सामायिक करना वो शुद्ध है ।

यहां शिष्य गुरु को पूछता है की, ''हे भगवान ! सामायिक लेकर बाद में सर्वथा मन का संवर तो नहीं कर सकते और मन के कुव्यापार से तो अवश्य सामायिक भंग होता है, फिर उसका प्रायश्चित लेना पडे, इसलीये अविधि से जो सामायिक करना इससे अच्छा वो नहीं ही करना बेहतर है ।''

गुरु उत्तर देते है, '' हे शिष्य समायिक तो अवश्य करना क्योंकि सामायिक जो लिया जाता है, वो दुविहं तिविहेणं याने कि मन वचन काया के द्वारा सावद्य व्यापार न करना न करवाना ऐसे भांगे से लिया जाता है, इसमे छः नियम आते है, इसमें से कभी कभी कदाचित एकाध नियम का भंग हो, तो भी पांच तो अखंडित रहते है और मन के कुव्यापार से जो पाप लगते है, उसका मिच्छामि दुक्कडं देने से छूटते है, इसलीये सामायिक अवश्य लेना और वो लेकर फिर जैसे बने वैसे उसे शुद्ध पालने की कोशिश करना कारण कि इस काल में दीक्षा एवं सामायिक जो है वो अभ्यास मात्र है और अभ्यास करते करते किसी वक्त शुद्ध चारित्र का भी लाभ होता है, इसलीये सामायिक नहीं ही करना यह योग्य नहीं है, फिर सातिचार जो अनुष्ठान है वो भी अभ्यास करते करते एक दिन निरतिचारपने से होने लगते है, ऐसा पूर्वाचार्य कहते है और फिर अभ्यास जो है वो जन्मांतर में भी व्यक्ति के पीछे पीछे चलता आता है, इसलीये सामायिक का अभ्यास अवश्य करना जैसे ग्रहण करने के पात्र में एक बार पडा हुआ उदक बिंदु (पानीकी बूंद) महता को नहीं पाता वैसे ही मन के सदोषपने से सामायिक करना वो भी अत्यंत दोष की महता को नहीं पाता है, कारण की उसकी ''मिच्छामि दुक्कडं'' से शुद्धि है, इसलीये अविधि से करने के बदले सामायिक नहीं ही करना वो ज्यादा अच्छा ऐसा बोलना असूयावचन है, कहा है कि

अविहियकया वरमकयं, असूयवचना भणंति समणुंणं ।
पायच्छित जम्हा, अकये गुरुअं कअे लहुअं ।।

क्योंकी प्रायश्चित जो है वो बिना आलोचना लिये बडा होता है, आलोचना लेने से हल्का होता है, मन संबंधित जो बुरे ध्यान है, उनकी मिच्छामि दुक्कडं से शुद्धि होती है ।

बारह महिने में..... (संख्या धारण करना) सामायिक करुंगा, ऐसा नियम करने से हम सामायिक व्रत के आराधक बनते है ।

१० देशावगासिक व्रत

श्रावक जीवन व्रतो से शोभायमान है....

व्रतो की शृंखला में आगे बढते हुए आज हमें दसवें देशावगासिक व्रत की कुछ विचारणा करने की है। श्रावक जीवन को पाकर भी संसार में जो जीव अपने परिग्रह एवं व्यापार आदि के पसारे बढाते है, जिसके कारण सर्वत्र आवागमन बढता है, साथ-साथ में कर्मबंधन में भी वृद्धि होती जाती है, इसीलिये तो इस शिक्षाव्रत में सर्वव्रतो एवं सर्व नियमों को धीरे -धीरे संक्षिप्त करने के लिये टोका गया है।

श्रावक का लक्ष्य तो साधुपने का ही होता है, जिससे संसार में वक्त आने पर वो अपनी बाजी समेटने का धीमे धीमे प्रयास करे और अंत में संसार को सलाम कर सही सलामत इसमें से बाहर निकल श्रमण जीवन की साधना में लग मिले हुए मानवभव को सफल बनाने का पुरुषार्थ करे।

आओ ! इस व्रत को जान समझकर इसके अतिचार पहचान कर शुद्ध व्रत की साधना हेतु प्रयासरत बने....

छठ्ठे दिशिव्रत के बारे में जो दिशाओ का प्रमाण जावजीव (आजीवन) तक किया हो उसे भी प्रतिदिन संक्षिप्त करे जैसे की एक दिशा में पांचसौ योजन जाने का नियम किया हुआ हो, उसमें से आज मुझे उस दिशा में जाना पडे तो दो गाउ तक ही जाना, उसके उपरांत नहीं जाना, इस तरह से संक्षेप कर के नियम करना उसी तरह जो प्राणतिपात आदि व्रतो को भी संक्षिप्त कर के प्रतिदिन मर्यादा करना कि आज मुझे अमुक आरंभ इतना ही करना इसके उपरांत नहीं करना। आजीवन तक के लिये दिग्विरमण व्रत में जितने योजन तक जाने का नियम लिया है, उसमें भी एक देश का आवकाश यानि गमनागमन की छूट रखकर शेष रहे हुए प्रदेश वो पुनरपि नियम में लेना ऐसा प्रतिदिन करना।

जैसे कोई मंत्रकार सपेरा, प्रथम आशीविष के धारक जो सर्प उसे बारह योजन प्रमाण देश में ही लाकर रखे यानि स्वल्प क्षेत्र में ही लाकर रखे अथवा पूरे शरीर में विष व्याप्त हो गया हो, उस विष को अंगुली के एक ही भाग में लाकर रखे वैसे ही यह व्रती भी सौ योजन (मील) वगैरह एक एक दिशा को लेकर आजीवन तक का ग्रहण किया हुआ जो दिगव्रत जिसका घर, शय्या स्थान आदि से उपरांत आगे जाने का निषेधरुप व्रत है, उसे संक्षिप्त कर एक गाउ आदि एक देश जितनी छूट रखे इसके उपरांत जाने का प्रतिदिन नियम करे तथा काल को लेकर भी जो मूल प्रमाण रखा है उसे संक्षिप्त करे, उसमें दो घडी, प्रहर, दिन, रात्रि निश्चित काल तक जाना आना खाना, पीना ऐसा सर्व भोग उपभोग का लेने देने का नियम उस क्षेत्र की मर्यादा में करे इसके उपरांत अधिक नकरे ऐसा दिवस, रात्रि, पांच दिवस, पन्द्रह दिवस तक का व्रत दृढता पूर्वक धारण करना उसे देसावगासिकव्रत कहा जाता है।

इस व्रत के बारे में अनाभोग आदि रुप से जो पांच अतिचार लगते है उनके नाम इस प्रकार से है १)

आनयन प्रयोग अतिचार २) प्रेषणप्रयोग अतिचार ३) शब्दानुपात अतिचार ४) रुपानुपात अतिचार ५) बाहय पुद्गलप्रक्षेप अतिचार ।

१) देशावगासिक करते हुए नियम की हुई भूमिका से बाहर की कोई चीज हो, उसकी गरज पडने पर वहां से किसी दूसरे के पास से वो वस्तु मंगाये वो प्रथम आनयन प्रयोग अर्थात आनयन वो कोई चीज को किसी जगह से अपने पास मंगवाना, उसकी योजना की वो **आणवणप्पयोग अतिचार** जानना ।

२) इसी तरह नियम की हुई भूमिका से बाहर की भूमिका से किसी जाने वाले व्यक्ति के साथ कोई वस्तु भिजवाना वो प्रेषण प्रयोग यानि अपने पास जो चीज हो वो किसी निमित्त से दूसरे ठिकाने भिजवा दे, उसकी योजना करना, वो दूसरा **पेसवणप्पयोग अतिचार** जानना ।

३) शब्दानुपात यानि अपने नियमित क्षेत्र के बाहर की भूमि में कोई व्यक्ति चला जाता हो और व्रतधारी को भी नियम लिये हुए क्षेत्र से बाहर का काम हो, तब वो व्यक्ति नियमित भूमिक्षेत्र से बाहर है इसलिये उसे बुलाने के लिये नहीं जाया जा सकता इसलीये खुद मार्ग पर आते जाते सब लोग उसे देखे इस तरह छत के उपर या छज्जे पर खडा रहकर उंची आवाज में खाँसे या गला खँखारे या हुंकारा दे या नाक में धागा डालकर छींके जिससे मार्ग पर जा रहा व्यक्ति वो शब्द सुनकर उसे देखे, जब दोनों का दृष्टिमिलाप हो तब वो व्यक्ति चलकर उसके पास आये, उसके साथ अपने कार्य संबंधित बातचीत कर ले यानि खांसी, छींक आदि के शब्द के अनुपात यानि उसके अनुसार (सहारे) जो दूसरे व्यक्ति को अपना सोचा हुआ कार्य करने हेतु बुलाये वो **शब्दानुपात** नामक तीसरा अतिचार जानना ।

४) बहुत कोशिश करके रुप दिखाना, वो ऐसे की छज्जे आदि के उपर चढकर इस तरह से खडा रहना कि जिससे नियम भूमि के बाहर जाने वाला व्यक्ति उसका रुप अवश्य देखे और आकर मिले, इस तरह से जो रुप के सहारे से अपनी उपस्थिति दूसरे को दर्शाये वो चौथा **रुपानुपात** नामक अतिचार जानना ।

५) पुद्गलप्रक्षेप, इसमे कंकर, पत्थर आदि का प्रक्षेप करके यानि डालकर अपने नियम से बाहर की भूमि में जा रहे व्यक्ति को खुद की उपस्थिति दर्शाये, जिससे वो व्यक्ति अपने पास आये तब खुद का कार्य कर ले वो **पुद्गलप्रक्षेप** नामका पांचवा अतिचार जानना ।

इन अतिचारो को टालकर शुद्ध देसावगासिक करना ।

वर्तमान समय में देसावगासिक व्रत में एक प्रतिक्रमण सहित दस सामायिक एक साथ करने का व्यवहार है, कम से कम एकासणे का व्रत अपेक्षित है ।

वर्ष में.....देसावगासिक करुंगा ऐसा नियम लेने का होता है ।

देसावगासिक करने से चारित्र गुण की वृद्धि एवं शुद्धि होती है । शिक्षाव्रत लेने से सर्वविरति की ओर के भाव मजबूत बनते है, जीवन निर्मल बनता है ।

११ पौषध व्रत

ग्यारहवां पौषधव्रत है, जिसको करने से जीव धर्म की पुष्टि को धारण करता है, वो पौषधव्रत कहलाता है, वो अवश्य अष्टमी आदि पर्व के दिन मे करना, उसमें रहना । यह पौषध आहार आदि के भेद से चार प्रकार का है १) सर्व चार प्रकार के आहार का परिहार करना, उसे **आहार पौषध** कहा जाता है २) सर्वथा प्रकार से स्नान आदि के द्वारा शरीर की शुश्रुषा यानि शोभा करने का परिहार करना तो **शरीर सत्कार पौषध** जानना । ३) सर्व प्रकार से औदारिक वैक्रिय मैथुन का परिहार करना वो **ब्रह्मचर्य पौषध** जानना ४) पापसहित जो होता है, उसे सावद्य कहते है, ऐसे व्यापार का जो परिहार करना उसे **अव्यापार पौषध** कहा जाता है ।

इस ग्यारहवे पौषध में पौषधोपवास व्रत के बारे में जो अनाभोगादि के माध्यम से प्रमाद के प्रसंग से पांच अतिचार लगते है, उनके नाम इस प्रकार से है -

१) शय्या यानि पूरे शरीर को पूर्ण हो जाय ऐसी लंबी सर्वोपकरण सहित हो वो साढे तीन हाथ प्रमाण जानना एवं संथारक यानि पाट कंबल आदि जानना । वो तथा उनकी भूमिका, उनकी प्रतिलेखना की न हो, प्रतिलेखना आदि अपनी दृष्टि से अच्छी तरह से निगाह डालकर देखना और यदि प्रतिलेखना की हो तो अच्छी तरह से नहीं की हो, दुप्पडिलेहिय यानि कुछ की कुछ नहीं की ऐसे प्रमाद सहित प्रतिलेखना की हो वो प्रथम अतिचार जानना ।

२) उसी शय्या संथारे को प्रमार्जित न किया हो कदाचित प्रमार्जित किया हो तो भी दुप्पमज्जिय यानि दोषयुक्त कुछ प्रमार्जित किया कुछ प्रमार्जित नहीं किया इस तरह से जैसे-तैसे प्रमार्जित किया हो वो दूसरा अतिचार ।

३) उच्चारपासवणभूमि यानि लघुनीति, बडीनिति उनका पासवण यानि त्यागभूमि का प्रतिलेखन न किया हो या यदि प्रतिलेखन किया हो तो भी जैसे-तैसे किया हो वो तीसरा अतिचार ।

४) बडी नीति तथा लघुनीति करने की भूमि को पूंजना, प्रमार्जन न किया हो अथवा जो किया हो जैसे-तैसे किया हो वो चौथा अतिचार ।

५) पौषधोपवास यानि पौषध के लिये उपवास किया हो उसका (सम्मअणणुपालणया) सम्यग् तरीके से पालन न किया हो वो पांचवा अतिचार ।

शय्या वो उपकरण सहित साढे तीन हाथ लंबी हो एवं उपाश्रय तथा संथारा, कंबल आदि व संथारा बिछाने की भूमि तथा मल वो बडीनीति करने की थंडिल एवं मूत्र वो लघुनीति करने की थंडिल की भूमि वगैरह उनकी दिन मे प्रतिलेखना न की हो, दृष्टि से देखा न हो तथा वस्त्र के आंचल से अथवा दंडासन से प्रतिलेखना न की हो और प्रमार्जना यानि पूंजा न हो अथवा विरुद्ध रुप से कुछ का पडिलेहण - प्रमार्जन किया और कुछ का पडिलेहण - प्रमार्जन नहीं किया । पौषध मे उपवास किया हो वो सम्यक् यानि अच्छे तरीके से सम्हाला न हो ।

चार प्रकार के आहार - अशन, पान, खादिम, स्वादिम इसमें से किसी एक का भी आहार करने की मन में इच्छा की हो । पौषध के दिन स्नान आदि से, मर्दन आदि से शरीर का सत्कार किया हो, सुश्रुषा की हो तथा अब्रम्हसेवा यानि कुशीलपने का सेवन किया हो, पौषध करते हुए व्यापार वगैरह धंधा, रोजगार आदि, घर के कामकाज संबंधी व्यापार करने की इच्छा की हो तथा पौषध में पूर्व में किये सावद्यकर्म अथवा व्यापार का स्मरण किया हो जैसे की फलाणा धंधा करके इतना धन कमाया और ऐसे-ऐसे प्रकार के सुख भोग.... अनागत का चिंतन यानि अब बाद में मैं ये अमुक कार्य है वो इस तरह से करुंगा, ऐसी प्रार्थना, इच्छा की हो, पौषध में शरीर को ठंडक पहुंचाने पानी छांटा हो, लेटने का कार्य किया हो, थक जाने पर लेटे हो, पौषध में रहकर भूख आदि की पीडा से पारणे की सूत्रणा करे की पौषध पूरा होने पर सुबह मैं अमुक जाति के आहार से पारणा करुंगा । ऐसी योजना की हो अथवा ऐसी विचारणा की हो की कब पौषध पूरा हो ओर कब मैं खाऊं ।

पौषध करते हुए दिन में जो पैर लंबे करके सोया रहे अथवा बैठा रहे, इस तरह का संथारा करे की पौषध में तो रात्रि की पोरसि पढने के बाद तो नहीं ही रहा जा सके, तो भी मुर्गी की तरह पैर पसार कर संथारा करना चाहिये उसके बदले दिन में ही लंबे पैर कर संथारा करके बैठे । पौषध में श्लेष्म डालने का बर्तन खुला रखा हो जिसमें मक्खी आदि जीव आकर पडे तो अतिचार लगता है, तथा उपाश्रय से निकलते वक्त आवस्सही और उपाश्रय में प्रवेश करते वक्त निस्सही कहना चाहिये वो नहीं कहा हो तो अतिचार लगता है ।

रात्रि में अभी पोरसि पढाई न हो, पढाये बिना ही सोये रहने के लिये संथारा किया हो तथा दीपक आदि का प्रकाश का संघट्ट हुआ हो ।

ऐसे अतिचार लगाने से पौषध अशुद्ध बनता है, जो कर्म निर्जरा होनी चाहिये वो होती नहीं है, आत्मा की निर्मलता प्राप्त करने के लिये शुद्धि सम्हालना अत्यन्त आवश्यक है ।

शुद्ध पौषध धर्म की आराधना आखिरकार आत्मा के हित के लिये साधक को करने की है, पौषध साधुता की प्राप्ति हेतु की सीडी है । ऐसा पौषध बारह महिने में कितने करना इसका नियम व्रतधारी श्रावक को करने का है । चार प्रहर के कितने पौषध एवं आठ प्रहर के कितने पौषध कर सकते है यह निश्चित कर व्रत का स्वीकार करने प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिये, अनेक आत्माये इस आराधना द्वारा निर्वाणपद को प्राप्त कर चुकी है ।